सारस्वतसाधना के आयाम

(आचार्य गोकुलप्रसाद त्रिपाठी स्मृति ग्रंथ)

संपादक

राधावल्लभ त्रिपाठी

न्यू भारतीय बुक कॉरपोरेशन

(दिल्ली) : : (भारत)

12. याद रह जाती है 41
—राधावल्लभ त्रिपाठी

13. सतसई की परंपरा और आचार्य गोकुलप्रसाद त्रिपाठी की अभिनव सतसई 56
—'अभिराज' राजेंद्र मिश्र

14. अभिनव सतसई में दोहा छंद के प्रयोग का वैशिष्ट्य 62
—रमाकांत शुक्ल

15. अभिनव सतसई में परतत्त्व चिन्तन 86
—आजादमिश्र 'मधुकर'

16. अभिनव सतसई में शास्त्रसंगति 94
—सत्यवती त्रिपाठी

17. अभिनव सतसई – एक काव्य धरोहर 110
—अर्चना दुबे 110

18. श्रीहर्ष के रूपक में आचार्य गोकुल प्रसाद त्रिपाठी की समीक्षा दृष्टि
—संजय कुमार 114

19. श्री गुरु-माहात्म्य
—बद्रीप्रसाद बिरमाल 123

द्वितीय सोपान
जन्मभूमि और कर्मभूमि

1. मालवा का इतिहास और संस्कृति - *महाभारतमीमांसा* की भूमिका से 127

2. *महाभारतमीमांसा* के प्रकाशन में राजगढ़ रियासत का योगदान 129
—बालचन्द्र पांण्डुरंग ठकार

3. नरसिंहगढ़ का इतिहास (सन् 1894 में नरसिंहगढ़राज द्वारा प्रकाशित 131
प्रकाशित ग्रंथ *मेहताब दिवाकर* से)

4. मालवा का संस्कृत अवदान 140
—भगवतीलाल राजपुरोहित

5. राजगढ़ का संक्षिप्त इतिहास व लोक संस्कृति 150
—गरिमा त्रिपाठी

6. राजगढ़ जिले का इतिहास, भूगोल और पुरातत्त्व 153
—स्मृति उपाध्याय

7. आचार्य गोकुल प्रसाद त्रिपाठी की कर्मस्थली नरसिंहगढ़ 156
—बालकृष्ण त्रिपाठी

18

श्रीहर्ष के रूपक में आचार्य गोकुल प्रसाद त्रिपाठी की समीक्षा दृष्टि

संजय कुमार

संस्कृत वाङ्मय अपने विशाल वैभव के साथ सतत प्रवहमाण है। प्रत्येक कालखण्ड में यह स्वयं को शास्त्रीय मानदण्डों से प्रक्षालित करता हुआ संस्कृत नाम को सार्थक बनाता है। प्रकृति की सुरम्य गोद से निकलकर संस्कृत महलों को भी अपने सुमधुर निनाद से रससिक्त करती है। हजारों वर्षों से इस पुनीत मन्दाकिनी का ऐसा प्रसाद है कि इसमें अवगाहन करने वाला हर प्रस्तर शिव बन जाता है। संस्कृत अपने विमल काव्यधारा के अपूर्वभाव गाम्भीर्य से इस भांति स्नान कराती है मानो अन्तःकरण भी सर्वशुक्लता का रूप धारण कर लेता है। इसकी अपार दीर्घ यात्रा का ऐसा कोई स्थल नहीं मिलता जहाँ कमनीयता, चारुता और पावनता का बोध न होता हो। चाहे वह काव्यकला हो या नाट्यकला, सब जगह आनन्दघन की वर्षा ही होती है। नाट्य की महनीयता का प्रकाशन करते हुए स्वयं आचार्य भरत कहते हैं—

न तच्छास्त्रं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते॥[1]

अर्थात् ऐसा ज्ञान-विज्ञान, शिल्प, कला, विद्या, योग और कर्म नहीं है जो इस नाट्यशास्त्र में समाहित न हो। अतः विविध विद्याओं के कोश के रूप में इसे स्वीकार किया जाता है। नाट्यकला सम्पूर्ण जीवनानुभवों से युक्त होती है। नाट्य अपने अभिनेयता के कारण सामाजिक के हृदय में सद्यः अपना स्थान बना लेता है। इसे शास्त्रीय भाषा में रूपक कहा जाता है। इस विषय में आचार्य धनंजय लिखते हैं—

अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्, रूपं दृश्यतयोच्यते, रूपकं तत्समारोपात्॥[2]

अर्थात् अवस्था का अनुकरण नाट्य कहलाता है। दृश्य होने के कारण इस नाट्य को रूप भी कहा जाता है। आचार्य विश्वनाथ भी यही स्वीकार करते हैं।[3] रूपक के अन्तर्गत दश रूपक और

अट्ठारह उपरूपक आते हैं। डॉ० गोकुल प्रसाद त्रिपाठी का एक ग्रन्थ *श्रीहर्ष के रूपक* सन् 1981 ई० में संस्कृत परिषद्, संस्कृत विभाग, सागर विश्वविद्यालय से प्रकाशित है। यह ग्रन्थ डॉ० गोकुल प्रसाद त्रिपाठी द्वारा विश्वविद्यालय की पीएच०डी० उपाधि के लिए सन् 1962 ई० में प्रस्तुत किया गया शोध-प्रबन्ध है। जिसमें छः अध्याय हैं- नाटककार श्रीहर्ष - परिचय, प्रियदर्शिका, रत्नावली, नागानन्द, श्रीहर्ष का कृतित्व और वैशिष्ट्य एवं तुलनात्मक परिशीलन तथा मूल्यांकन।

डॉ० गोकुलप्रसाद त्रिपाठी द्वारा ग्रन्थ का शीर्षक *श्रीहर्ष के रूपक* रखा गया है, जिसका एक विशेष कारण है। प्रियदर्शिका और रत्नावली उपरूपक (नाटिका) के अन्तर्गत तथा नागानन्द रूपक (नाटक) के अन्तर्गत आता है। इसीलिए लेखक के द्वारा इस ग्रन्थ का शीर्षक *श्रीहर्ष के रूपक* रखा गया है। ग्रन्थ के इस शीर्षक से रूपक और उपरूपक (नाटिका) दोनों का प्रतिनिधित्व हो जाता है। यहाँ नैषधीयकार श्रीहर्ष की बात नहीं की जा रही है अपितु प्रियदर्शिका, रत्नावली और नागानन्द के प्रणेता श्रीहर्ष की बात की जा रही है।

कतिपय विद्वानों के अनुसार श्रीहर्ष के नाटक उनकी स्वयं की रचनाएँ नहीं हैं। कुछ का कहना है कि किसी कवि ने उन्हें नाट्य सृष्टि करके प्रचुर धन लेकर राजा के नाम से प्रसिद्ध कर दिया। आचार्य मम्मट ने तो अपने प्रयोजन 'अर्थकृते की सिद्धि में' 'श्रीहर्षदेर्धावकादीनामिव धनम्' में स्पष्टतः निर्देश भी कर दिया है।[4] कुछ मनीषीगण तो वाणभट्ट का ही दूसरा नाम धावक मानने की सम्भावना व्यक्त करने लगते हैं, जो पूर्णतः निःसार है। डॉ० गोकुल प्रसाद त्रिपाठी के द्वारा इस तथ्य का बड़े ही कड़े शब्दों में प्रमाण सहित खण्डन किया गया है। वे कहते हैं- "संस्कृत साहित्य को अनेक राजाओं एवं सम्राटों ने अपनी रचनाओं से गौरवान्वित किया है। सम्राट् समुद्रगुप्त कवि राजा था। वासुदेव, सातवाहन, शूद्रक, हाल, और शशांक राजा भी थे और साहित्यकार भी। सम्राट यशोवर्मन् ने रामाभ्युदय नाटक लिखा था। सोड्ढल ने विक्रमादित्य, हर्ष, भोज, मुंज आदि कवीन्द्र नरेन्द्रों का उल्लेख किया है। राजतरंगिणी के अनुसार, धर्मशोक, गोनन्द, राणादित्य, अनन्तवर्मा और कलश काश्मीर के राजा और कवि दोनों थे। इनके अतिरिक्त प्रवरसेन वाकाटक, महेन्द्रविक्रम वर्मन्, विग्रहराजदेव इत्यादि अनेक राजा उत्कृष्ट साहित्यकार हैं केवल राजा ही नहीं। गंगादेवी, रामभद्राम्बा इत्यादि रानियों ने भी काव्य रचना की है।[5] इस प्रकार लेखक के द्वारा बहुत ही तार्किक रूप से शीलादित्य सम्राट् हर्षवर्धन को उच्चकोटि के विद्वान् तथा साहित्यकार रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। वे सम्राट् होने के साथ-साथ कवि और नाटककार भी थे, इसमें कोई सन्देह नहीं है। इस विवेचन से लेखक डॉ० गोकुल प्रसाद त्रिपाठी के आलोच्य दृष्टि की पुंखानुपुंखता प्रमाणित होती है। नाट्यशास्त्रीय मानदण्ड जो आचार्य भरत के द्वारा स्थापित किया गया था उस मानदण्ड को नाटकों में परखने वाले डॉ. त्रिपाठी एक समर्थ हस्ताक्षर के रूप में नाट्य जगत् में पदार्पण करते हैं। सहज एवं सरल भाषा में समान भाव से नाट्य प्रतिमानों का केवल स्पर्श ही नहीं करते बल्कि उसके अन्तस्तल तक पहुँचते भी हैं। कहने का भाव यह है कि श्रीहर्ष के द्वारा जिन रूपकों का विधान किया गया है उन पर डॉ० गोकुल प्रसाद त्रिपाठी की आलोचक दृष्टि ने उन्हें

कालजयी बना दिया है। लेखक द्वारा यह भी घोषित किया गया है कि इस ग्रन्थ के पूर्व ऐसा कोई ग्रन्थ देखने में नहीं आया जिसमें श्रीहर्ष के रूपकों का आलोचनात्मक अध्ययन गवेषणात्मक पद्धति से प्रस्तुत किया गया हो। अतः यह एक अद्वितीय ग्रन्थ है जिसमें श्रीहर्ष के नाट्यकला कौशल तथा कविता के सभी आयामों को प्रकाशित किया गया है।

श्रीहर्ष अपने समय के नाट्यधर्मिता के संवाहक नाटककार माने जाते हैं। उन्होंने पदे-पदे अपनी नाट्यकृति-प्रियदर्शिका, रत्नावली और नागानन्द में नाट्य नियमों का पालन किया है, जिनका उल्लेख दशरूपक एवं साहित्यदर्पण सरीखे अनेक ग्रन्थों में किया गया है। इसलिए महाकवि श्रीहर्ष का नाम भास, कालिदास, शूद्रक, विशाखदत्त और भवभूति आदि कवियों की श्रेणी में रखा जाता है। श्रीहर्ष के नाट्यकला के सम्बन्ध में डॉ० गोकुल प्रसाद त्रिपाठी लिखते हैं "यदि श्रीहर्ष ने अपने पूर्ववर्ती नाटककारों से कुछ लिया है तो अपने साहित्यिक उत्तराधिकारियों को कुछ दिया भी है। यह बात दूसरी है कि ऐतिहासिक परिस्थितियों की प्रतिकूलता के कारण ऐसा प्रतिभाशाली नाटककार उनके बाद उत्पन्न नहीं हुआ, जो अपनी नाट्यकला का मौलिकता के साथ आगे विकास करता है।"[6] श्रीहर्ष कृत्रिम शैली के पथिक नहीं हैं। वे कालिदास, भास आदि कवियों के स्वाभाविक शैली के अनुगामी हैं। अपने समकालीन मयूर या बाणभट्ट की शैली से अप्रभावित दिखलाई पड़ते हैं। श्रीहर्ष की शैली स्फीत, सरल तथा कोमल हैं। अकृत्रिम शैली रूप प्रसाद शैली का उन्हें अन्तिम नाटककार माना जाता है। यद्यपि विशाखदत्त की शैली विशेष कठिन नहीं है परन्तु उनकी वस्तु योजना की गम्भीरता जटिल सी लगने लगती है। भट्टनारायण, भवभूति तथा मुरारि की शैली श्रीहर्ष की अपेक्षा अधिक कृत्रिम लगती है। श्रीहर्ष अपनी नाट्यकृतियों में चित्रकार की भांति सुन्दर वस्तु योजना का प्रतिपादन करते हैं।

रूपक की नाट्यधर्मिता के कारण ही 'काव्येषु नाटकं रम्यम्' कहा जाता है। इसके तीन आधार होते हैं- वस्तु, नेता और रस। जिनमें वस्तु तत्त्व के तीन विभाग किये जाते हैं- प्रख्यात, उत्पाद्य और मिश्र। कथावस्तु के अन्तर्गत पांच अर्थ प्रकृतियाँ होती है-बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी तथा कार्य। कथा वस्तु की पाँच अवस्थाओं का वर्णन अनिवार्य है- आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम। इस प्रकार अर्थप्रकृतियों एवं अवस्थाओं के मेल से नाट्य की पाँच सन्धियों की सृष्टि की जाती है- मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और उपसंहृति। इन पंच सन्धियों का नाट्यप्रयोग की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्व होता है। इन सन्धियों से अतिरिक्त नाट्य में अर्थोक्षेपक भी होते हैं। इनकी संख्या भी पांच होती है- विष्कम्भक, प्रवेशक, चूलिका, अंकास्य और अंकावतार। इन सबसे नाट्यशैली की महनीयता प्रदर्शित होती है। इसी नाट्यशैली के लिए श्रीहर्ष प्रसिद्ध भी हैं। उन्होंने प्रत्येक नाट्य कृति में उपर्युक्त वस्तुतत्त्व का विधिवत् प्रयोग किया है इसीलिए श्रीहर्ष को कुशल नाट्यप्रयोगधर्मी भी कहा जाता है। डॉ० गोकुल प्रसाद त्रिपाठी के द्वारा श्रीहर्ष के तीनों रूपकों में प्राप्त सभी नाट्यधर्मो का विधिवत् उल्लेख किया गया है। रूपक का वस्तुतत्त्व ही प्राण होता है। इसी से रूपक की रम्यता प्रमाणित होती है। जिसके सम्बन्ध में डॉ० त्रिपाठी स्वयं

कहते हैं- "श्रीहर्ष के रूपक लक्षण ग्रन्थों के नियमों के अनुकूल बने हैं। साहित्य निर्माण की इस विशेषता को दृष्टिगत रखते हुए यही स्वाभाविक प्रतीत होता है कि आदर्श नाटिका का निर्माण कर चुकने पर श्रीहर्ष ने रूपकों के सर्वश्रेष्ठ प्रकार के नाटक के निर्माण का प्रयत्न किया है।"[7] इसके साथ ही साथ डॉ० गोकुल प्रसाद त्रिपाठी जी उनके वस्तुयोजना के उस पक्ष की भी प्रशंसा करते है जिससे एक चित्र उभरकर मानस पटल पर आ जाता है। विवाह के बाद प्रथम समागम के समय लजाती हुई मलयवती को देखकर जीमूतवाहन की उक्ति से चित्रशैली का सहज बोध होता है—

दृष्टा दृष्टिमधो ददाति कुरुते नालापमाभाषिता
शय्यायां परिवृत्य तिष्ठति बलादालिंगिता वेपते।
निर्यान्तीषु सखीषु वासभवनान्निर्गन्तुमेवेहते
जाता वामतयैव मेऽद्य सुतरां प्रीत्यै नवोढाप्रिया।।[8]

अर्थात् जब मैं उसकी ओर देखता हूँ तो वह लज्जा से आँखे झुका लेती है। जब मैं उससे बात करता हूँ तो वह कोई उत्तर नहीं देती। शय्या पर मुँह फेरकर बैठी रहती है और आलिङ्गन करने पर काँपने लगती है तथा कम्पित होकर आलिङ्गन में विघ्न डालती है। जब उसकी सखियां उसे छोड़कर शयन कक्ष से जाना चाहती है तो वह भी बाहर जाना चाहती है। इस प्रकार नवोढा मलयवती मेरे प्रत्येक व्यापार के प्रतिकूल आचरण करती है। परन्तु यह सब होने पर इन्हीं गुणों के कारण अधिक प्रिय लगती है। कवि के द्वारा जो लज्जा के भाव का सहज रूप में वर्णन किया गया है उससे स्वाभाविक रूप से सौन्दर्य का बोध होने लगता है। सौन्दर्य तो लज्जा में ही सुशोभित होता है। इसकी एक अलग ही महिमा है कि जो दिखाई देता है, उससे आकर्षण और जो नहीं दिखाई देता है उसके प्रति उत्सुकता उत्पन्न होती है। इन्हीं आकर्षण और उत्सुकता के मध्य सौन्दर्य चमत्कृत होता है। यह सौन्दर्यबोध ही कवि की प्रतिभा का परिचायक माना जाता है। रत्नावली में सागरिका की मदनावस्था का वर्णन भी कुछ इसी प्रकार का भाव प्रकट करता है। सागरिका के मदनशय्या की अवस्था देखकर विदूषक के प्रति राजा की उक्ति दृष्टव्य है—

परिम्लानं पीतस्तनजघनसङ्गादुभयतः
स्तनोर्मध्यस्यान्तः परिमिलनमप्राप्य हरितम्।
इदं व्यस्तन्यासं श्लथभुजलताक्षेपवलनैः
कृशाङ्ग्याः सन्तापं वदति विसिनीपत्रशयनम्।।[9]

अर्थात् कमलिनी पत्रों का यह शयन सागरिका के पीन स्तन और जघन के संसर्ग से दोनों ओर मलिन हो गया है और शरीर के बीच के (कटिप्रदेश) भाग का पत्रों से स्पर्श न होने के कारण शय्या का वह भाग हरा है। शिथिल भुजाओं के इधर-उधर फेंकने के कारण शय्या की संरचना अस्त-व्यस्त हो गयी है। इस प्रकार यह कमलिनीपत्र की शय्या कृशाङ्गी सागरिका के मदन सन्ताप को व्यक्त कर रही है।

यहाँ भी कवि ने अपने प्रतिभा कौशल से विरहावस्था के सहजभाव को व्यक्त किया है। श्रीहर्ष प्रकृति सुषमा के अनिवार्य गुणों से भी बहुशः प्रभावित दिखलाई पड़ते हैं। उनकी कृतियों में चन्द्रमा, वसन्त, उपवन, क्रीडा, उत्सव आदि का सुन्दर वर्णन किया गया है। प्रियदर्शिका में ग्रीष्म ऋतु का वर्णन भी उनकी चित्रख्यापनप्रतिभा का परिचय कराती है—

आभात्यर्कांशुतापक्वथदिव शफरोद्वर्त्तिकादीर्घिकाम्भ-
श्छत्राभं नृत्तलीलाशिशिलमपि शिखी बर्हभारं तनोति।
छायाचक्रं तरूणां हरिणशिशुरुपेत्यालवालाम्बुलुब्धः
सद्यस्त्यक्त्वा कपोलं विशति मधुकरः कर्णपालीं गजस्य॥[10]

अर्थात् मछलियों के द्वारा हिलाया हुआ बावड़ियों का पानी ऐसा लग रहा है जैसे सूर्य की किरणों की गर्मी से उबल रहा है। दोपहर की गर्मी से परेशान मोर अपने पंखों को छतरी की तरह फैलाये हुए हैं ताकि वह सूर्य के ताप से बच सके, उसके पङ्ख नृत्य कला को छोड़ शिथिल पड़ गये हैं, फिर भी गरमी से बचने के लिए वे फैले हुए हैं। हिरन का शावक आलवाल के पानी को पीने के लिए वृक्षों की छाया के घेरे में चला गया है और भौंरा जो हाथी के कपोल पर मदपान कर रहा था वह सूर्यताप से उद्विग्न होकर हाथी के कपोल को छोड़कर उसके कान में प्रवेश कर गया। कवि का यह वर्णन गागर में सागर भरने के समान हैं। यहाँ कवि ने प्राकृतिक रूप में दोपहर का अत्यन्त स्वाभाविक वर्णन किया है। वस्तुतः जो सौन्दर्य स्वाभाविकता और सरलता में व्यक्त होता है, वह कृत्रिमता में कदापि व्यक्त नहीं हो सकता है। इसीलिए श्रीहर्ष की स्वाभाविक शैली ही उनकी पहचान बन गयी है। प्रियदर्शिका, रत्नावली और नागानन्द जैसे रूपकों के उचित वस्तुतत्त्व की प्राप्ति से उनकी नाट्यकला और विकसित हुई है। प्रियदर्शिका और रत्नावली दोनों ही प्रणय कथा को लेकर लिखी गई नाटिकाएं हैं और नागानन्द त्याग की भूमि में विकसित होने वाला नाटक। तीनों में अद्भुत वस्तुतत्त्व की कल्पना कवि के द्वारा की गई है। इनके इस प्रतिभा के सन्दर्भ में डॉ. गोकुल प्रसाद त्रिपाठी ने लिखा है "जहाँ तक श्रीहर्ष के साहित्य सृजन का सम्बन्ध है उनमें एक उच्च कोटि के साहित्यकार के सभी गुण थे। नवीन कल्पना, सुकुमार भाव व्यंजना, वर्णन विदग्धता, भाषा-सौष्ठव और कला या अलंकार सभी का उनकी कृतियों में यथेष्ट समावेश है।"[11] श्रीहर्ष का साहित्यिक अवदान कालजयी के समान रूपक काव्य विधा को अक्षुणता प्रदान किये हुए है। डॉ० त्रिपाठी समय के सापेक्ष भाषा प्रयोग में निपुण हैं। वे एक स्थल पर "मुदई सुस्त गवाह चुस्त"[12] जैसी लोकोक्ति का भी प्रयोग भी उन्होंने किया है, जिससे उनकी भाषा की मौलिकता का बोध होता है।

डॉ० त्रिपाठी भाषा के समर्थ शिल्पकार हैं। उनकी भाषा एवं भाव में सदैव सामजंस्य दिखलाई पड़ता है। नाट्यकृति का अभिनय पक्ष सबसे बेजोड़ माना जाता है। अभिनय की दृष्टि से भी श्रीहर्ष की नाट्यकृतियाँ अनुपम हैं। पात्र से लेकर कथावस्तु इत्यादि सभी उनके रूपकों में अनिवार्य एवं सहज धर्म विद्यमान हैं जो अभिनय में सहायक सिद्ध होते हैं। सबसे बड़ी बात तो

यह है कि श्रीहर्ष की नाट्यकृतियाँ छोटी हैं जिनका सम्यक् प्रकार से अभिनय किया जा सकता है। विभिन्न अवस्थाओं का अनुकरण ही अभिनय में किया जाता है। आचार्य भरत अभिनय के सम्बन्ध में कहा है—

विभावयति यस्माच्च नानार्थान् हि प्रयोगतः।
शाखाङ्गोपाङ्ग संयुक्तस्तस्तस्मादभिनयः स्मृतः॥[13]

अर्थात् जिसके सांगोपांग प्रयोग के द्वारा नाट्य के नानाविध अर्थों का सामाजिक को विभावन या रसास्वादन कराया जाय उसे अभिनय कहते हैं। इस प्रकार श्रीहर्ष सामाजिक को नाट्य के नाना विध अर्थों से रसास्वादन कराने में सफल नाटककार हैं। उनके संवाद छोटे, मार्मिक और प्रभावोत्पादक हैं। इस प्रकार के संवाद से अभिनय में सहायता मिलती है। अतः अभिनय की दृष्टि से श्रीहर्ष के तीनों रूपक श्रेष्ठ हैं। इन रूपकों के अभिनय से कहीं भी दर्शक विरसता का अनुभव नहीं करता है बल्कि उनमें उत्तरोत्तर घटनाक्रम के प्रति उत्सुकता बनी रहती है। यही उत्सुकता नाट्य महिमा की सर्वस्व परख मानी जाती है। डॉ. गोकुल प्रसाद त्रिपाठी अनेकों स्थल पर अभिनय की जीवंतता प्रकाशित करते चलते हैं। उनकी दृष्टि में अभिनय ही नाट्य कृति का मर्म तत्त्व होता है। मर्म इस अर्थ में क्योंकि अभिनय द्वारा ही सहृदय चमत्कृत होता है, वहीं तादात्म्य का साधन है। अभिनय रंजन का निकष है। श्रीहर्ष के रूपकों के अभिनय के मनोरंजनात्मक माहात्म्य के विषय में वे कहते है कि "तीनों ही रूपकों में मनोरंजन की पर्याप्त सामग्री है। रत्नावली में चेटियों का द्विपदी खण्ड गीत और नृत्य तथा ऐन्द्रजालिक का कौतुक, प्रियदर्शिका में गर्भाङ्क दृश्य और नागानन्द में शेखरक, नवमालिका और विदूषक का प्रहसन ऐसे स्थल हैं जो साधारण से साधारण जन का मनोरंजन करा सकते हैं। रसिकों के लिए तीनों ही रूपकों में नाटिकाओं का उभयविध शृंगार उत्कृष्ट रूप में है। आदर्शवादियों के लिए वत्सराज की गुणसम्पन्नता, गुणग्राहिता एवं धीरता का और जीमूतवाहन के आत्मत्याग का उत्कर्ष प्रभावशाली है। उत्कृष्ट काव्य में रुचि रखने वालों के लिए भाव एवं कला दोनों दृष्टि से सुन्दर-सुन्दर कथन इन रूपकों में उपलब्ध होते हैं।[14] सर्वविध लोक रंजन ही नाट्य का ध्येय है। वेदों के उपरान्त सर्वजन के लिए ही नाट्य की रचना की गयी। श्रीहर्ष के रूपक इस उद्देश्य में पूर्ण सफल हैं।

डॉ. त्रिपाठी नाट्यधर्मिता के मर्म को समझने वाले आचार्य हैं। वे नाट्य नियमों के साथ-साथ उसके व्यावहारिक पक्ष को भी रेखांकित करते चलते हैं। वे हर इसके नाट्य-विभिन्नता की प्रियता को प्रकाशित करते हैं। रसों के सम्बन्ध में भी आचार्य प्रवर के द्वारा पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। उन्होंने शृंगार रस के दोनों पक्षों संभोग और वियोग, अद्भुत रस, भयानक रस, करुण रस तथा वीर रस आदि रसों का विधिवत् संधान अपने आलोचना ग्रन्थ में किया है। अपने आलोच्य नाट्यकृतियों के शृंगार रस के सम्बन्ध में उन्होंने कहा है "शृंगार के संयोग और विप्रलम्भ दोनों ही पक्षों का निर्वाहन प्रियदर्शिका और रत्नावली में हुआ है। नागानन्द में शृंगार केवल अंगरूप में है। इसमें संयोग शृंगार तृतीय अंक में और करुण को छूता हुआ विप्रलम्भ पंचम अंक में है।"[15] इस प्रकार

रस परिपाक की दृष्टि से भी श्रीहर्ष के रूपक संपन्न हैं। डॉ० त्रिपाठी अपनी आलोचना में इन समस्त आयामों को समाहित करते हैं।

आचार्य गोकुल प्रसाद त्रिपाठी पात्रों की चरित्र सृष्टि में भी अपनी विशिष्ट आलोचक प्रतिभा का परिचय देते हैं। उनके द्वारा रत्नावली, नागानन्द और प्रियदर्शिका के पात्रों की अद्भुत सृष्टि की गयी है। पात्र के व्यक्तित्व के कोने-कोने पहुँचकर उन्होंने उसके व्यक्तित्व को हस्तामलकवत् देखा है। वे जीमूतवाहन के त्याग और बलिदान के सम्बन्ध में लिखते हैं "जीमूतवाहन माता-पिता का सच्चा भक्त है और उसकी यह भक्ति नाटक में आद्योपान्त बनी रहती है। वानप्रस्थी माता-पिता की सेवा के लिए वह राज्य को लात मारकर उनके साथ वन में रहता है।"[16] लेखक ने जीमूतवाहन के त्याग को राम और भरत की श्रेणी में रखने का प्रयास किया है। मनुष्य का व्यक्तित्व त्याग और कठिनाई में ही सँवरता है। वास्तव में साधन सम्पन्न होकर माता-पिता की सेवा तो सहज है लेकिन सब कुछ छोड़कर जंगल में रहकर माता-पिता की सेवा करना कठिन एवं स्तुत्य है।

यौगन्धरायण का जीवन अत्यन्त उदार एवं पवित्र है। वह अपने स्वामी उदयन के राज्योदय में ही संलग्न रहता है। उसके द्वारा वासवदत्ता के विषय में भ्रम फैलाने इत्यादि का जो भी कुचक्र रचा जाता है उन सब में राजा उदयन का अभ्युदय ही निहित था। डॉ० त्रिपाठी ने कहा है "जो कुछ उसने किया वह अपने स्वामी के अभ्युदय एवं हित की शुद्ध भावना से किया और ऐसे कौशल से किया कि जब अंत में उसकी योजना का सारा रहस्य खुलता है तो उससे कुछ कहना तो दूर उल्टे उसकी प्रशंसा ही करनी पड़ती है।"[18] मन्त्री का राजा एवं राज्य के प्रति सत्यनिष्ठ भावना ही यौगन्धरायण के प्रशंसा का कारण है। हमारे धर्मशास्त्रों में बताया गया है कि मन्त्री को सदैव राजा एवं राज्य के हित कार्य में संलग्न रहना चाहिए। इस विषय में श्रीहर्ष ने यौगन्धरायण के रूप में जो एक मन्त्री के जीवन को स्पष्ट किया है वह निश्चित रूप से साहित्य एवं समाज के लिए प्रेरणा का स्रोत है। सागरिका से उदयन के विवाह के लिए यौगन्धरायण जो ताना-बाना बुनता है वह महाभारत के विदुर समान दिखलाई पड़ता है। विदुर ने भी पाण्डवों को लाक्षागह से बचाने में कुछ इसी तरह ही अपनी कुशलता का परिचय दिया था। विदुर का पाण्डवों की रक्षा करना धर्म था क्योंकि युधिष्ठिर उस समय हस्तिनापुर के युवराज थे। इस प्रकार डॉ० गोकुल प्रसाद त्रिपाठी ने यौगन्धरायण के व्यक्तित्व की परीक्षा करके तत्कालीन राजधर्म को भी परिभाषित किया है।

डॉ० गोकुल प्रसाद त्रिपाठी ने अपने ग्रन्थ *श्रीहर्ष के रूपक* में नायक-नायिका के विषय में पर्याप्त प्रकाश डाला है। वे नायक एवं नायिका के विधान तत्त्व को ठीक प्रकार से समझते हैं। वास्तव में नाटक के नायक और नायिका ही मूल आकर्षण होते हैं। नायक अपने स्वभाव के अनुसार पौरुष का संचार करता है तो नायिका अपने लास्य भाव से सबमें कोमलता उत्पन्न करती है। हर्ष की नायिका के सम्बन्ध में डॉ० गोकुल प्रसाद त्रिपाठी लिखते हैं कि "एक नाटिका की नायिका को श्रीहर्ष के समय के साहित्याचार्य जिस रूप में देखने की अपेक्षा करते थे उसी रूप में श्रीहर्ष ने सागरिका का चरित-चित्रण किया है।"[19] कौशाम्बी नरेश उदयन रत्नावली नाटिका के

नायक हैं। वे धीर ललित प्रकृति के नायक माने जाते हैं। वे अपने सार्वजनिक जीवन में बहुत ही लोकप्रिय हैं लेकिन राजनीतिक जीवन से विमुख। यह बात डॉ० त्रिपाठी की आलोचक दृष्टि से ओझल नहीं हुई है। उन्होंने लिखा है "यद्यपि रत्नावली नाटिका का उद्देश्य वत्सराज के सार्वजनिक या राजनैतिक जीवन का चित्र प्रस्तुत करना नहीं है। उसके प्रणय जीवन की झलक ही इस नाटिका में प्रधानतया मिलती है। तथापि श्रीहर्ष ने अनेक स्थलों पर उसके उत्तमशासन प्रबन्ध, प्रजापालन, अनुशासन प्रियता आदि गुणों की ओर संकेत किया है।"[10] इस प्रकार समीक्षक डॉ० त्रिपाठी ने पात्रों के व्यक्तित्व चिन्तन पर गम्भीर समीक्षा की है।

डॉ० त्रिपाठी के द्वारा धार्मिक मान्यताओं के विषय में भी कई स्थल पर संकेत किया गया है। मनुष्य के जीवन में धर्म एक शुभ पक्ष के रूप में आता है। धर्म धारण से मनुष्य का जीवन कर्तव्याकर्तव्य विवेक उत्पन्न करता है। श्रीहर्ष स्वयं धर्म के विषय में पर्याप्त उदार थे। व्यक्ति बिना किसी भय एवं संकोच के एक धर्म से दूसरे धर्म में स्वेच्छया दीक्षित हो सकता था। वे स्वयं विष्णु एवं शिव का आदर करते थे। यद्यपि उन्होंने बौद्ध धर्म को स्वीकार कर लिया था तो भी वे वैष्णव एवं शैव संप्रदायों के अनुयायियों का सम्मान करते थे, जिसका संकेत उनकी रचनाओं में मिलता है। यह सब पात्रों के ही रूप में दृष्टिगोचर होता है। नाट्यकृति में पात्र ही सर्वव्यवस्था का नियन्ता और रस का पोषण करता है। जिस नाट्यकृति के पात्र कुशल होते हैं वही नाट्यकृति उत्तम मानी जाती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आचार्य गोकुल प्रसाद त्रिपाठी ने अपने ग्रन्थ 'श्रीहर्ष के रूपक' में व्यापक दृष्टि से समीक्षा की है। वे श्रीहर्ष के रूपकों में प्राप्त नाट्यतत्त्व की गहन मीमांसा करते हुए उसके औचित्य को स्पष्ट करते हैं। साथ ही साथ देश-काल के अनुसार उसे व्यावहारिकता भी प्रदान करते है। उन्होंने वस्तु तत्त्व, नेता और रस का केवल वर्णन ही नहीं किया है अपितु सामाजिक के हृदय को अपनी आलोच्य दृष्टि से रसासिक्त भी करने का प्रयास किया है। अतः हम कह सकते हैं कि डॉ० गोकुल प्रसाद त्रिपाठी नाट्य समीक्षा परम्परा के अग्रदूत हैं।

सन्दर्भ सूची

1. नाट्यशास्त्र, 1/116
2. दशरूपक, 1/8
3. साहित्यदर्पण, 6/1
4. काव्यप्रकाश, 1/2
५. त्रिपाठी, डॉ० गोकुल प्रसाद, श्रीहर्ष के रूपक, पृ०७
6. वही, पृ०30
7. वही, पृ०180
8. नागानन्द, 3/4
9. रत्नावली, 2/13
10. प्रियदर्शिका, 7/12

11. त्रिपाठी, डॉ० गोकुल प्रसाद, *श्रीहर्ष के रूपक*, पृ०23
12. वही, पृ०137
13. नाट्यशास्त्र, 8/7
14. त्रिपाठी, डॉ० गोकुल प्रसाद, *श्रीहर्ष के रूपक*, पृ०173
15. वही, पृ०157
16. वही, पृ०132
17. उत्तररामचरितम्, 7/25
18. त्रिपाठी, डॉ० गोकुल प्रसाद, *श्रीहर्ष के रूपक*, पृ०98
19. वही, पृ०101
20. वही, पृ०90